REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2024

कथानक : प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय स्वरूप का अध्ययन

निर्मला साहू
हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश :–

कथानक अपने अद्वितीय और गंभीर स्वरूप के साथ भारतीय साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह एक प्राचीन भारतीय कला रूप है जिसमें व्यक्ति या समाज की विभिन्न कथाएं, परंपराएं और इतिहास को आधार बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय स्वरूप उनके कथानक में दर्शाया जाता है। इन नाटकों में, किसी विशेष कथा या इतिहास को आधार बनाकर समाज की विविधता, उसकी संस्कृति और मानवता की मूलभूत समस्याओं को प्रस्तुत किया जाता है। ये नाटक अक्सर धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों पर आधारित होते हैं, लेकिन उन्हें मनोविज्ञान, राजनीति, समाज और व्यक्तित्व की समस्याओं को समझाने के लिए भी उपयोग किया जाता है। प्रसाद के नाटकों में कथानक की विशेषता उनके चित्रण में होती है, जो आम जनता के जीवन और संघर्ष को सामाजिक, राजनीतिक और मानविक मानदंडों के साथ जोड़ते हैं। ये नाटक उपन्यास, कहानियाँ, और पुराणों से आधारित हो सकते हैं, लेकिन उन्हें उनके समय की सामाजिक एवं सांस्कृतिक वास्तविकता के साथ जोड़ा जाता है। इसके अलावा, इन नाटकों का भाषायी और रंगमंच की शैली में अद्वितीय शैली में भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। ये नाटक भारतीय थियेटर के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और भारतीय संस्कृति और समाज की मान्यताओं को प्रस्तुत करने में मदद करते हैं।

मूल शब्द :– मनोविज्ञान, राजनीति, समाज, और व्यक्तित्व की समस्या।

प्रस्तावना :–

कथानक अपने अद्वितीय और गंभीर स्वरूप के साथ भारतीय साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह एक प्राचीन भारतीय कला रूप है जिसमें व्यक्ति या समाज की विभिन्न कथाएं, परंपराएं, और इतिहास को आधार बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय स्वरूप उनके कथानक में दर्शाया जाता है। इन नाटकों में, किसी विशेष कथा या इतिहास को आधार बनाकर समाज की विविधता, उसकी संस्कृति, और मानवता की मूलभूत समस्याओं को प्रस्तुत किया जाता है। ये नाटक अक्सर धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों पर आधारित होते हैं, लेकिन उन्हें मनोविज्ञान, राजनीति, समाज, और व्यक्तित्व की समस्याओं को समझाने के लिए भी उपयोग किया जाता है। प्रसाद के नाटकों में कथानक की विशेषता उनके चित्रण में होती है, जो आम जनता के जीवन और संघर्ष को सामाजिक, राजनीतिक, और मानविक मानदंडों के साथ जोड़ते हैं। ये नाटक उपन्यास, कहानियाँ, और पुराणों से आधारित हो सकते हैं, लेकिन उन्हें उनके समय की सामाजिक एवं सांस्कृतिक वास्तविकता के साथ जोड़ा जाता है। इसके अलावा, इन नाटकों का भाषायी और रंगमंच की शैली में अद्वितीय शैली में भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। ये नाटक भारतीय थियेटर के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और भारतीय संस्कृति और समाज की मान्यताओं को प्रस्तुत करने में मदद करते हैं।

प्रसाद का नाटक रचनाकाल वर्ष 1910 से आरंभ होकर 1933 तक फैला हुआ है। कालक्रमानुसार 'सज्जन' इनकी प्रथम कृति है तो ध्रुवस्वमिनी अंतिम। 'कामना' शुद्ध काल्पनिक आन्योपदेशिक रूप है 'एक घूँट' में वर्तमान समाज की झांकी है, तो अन्य सभी नाटकों के कथानक इतिहास एवं पुराण की घटनाओं पर आधारित है। प्रसाद जी के नाटक वैदिकाल से लेकर हर्षवर्धन के राज्यकाल तक के दीर्घ किन्तु लुप्त हो रहे भारतीय इतिहास का पुनःनिर्माण कर रहा है। प्रसाद प्रथम नाटकार हैं जिन्होंने ऐतिहासिक नाटकों के कथानक चुनने के लिए स्वयं इतिहास की गहरी खोज की थी। इनकी इतिहास संबंधी ये गवेषणाएं अपना स्वतंत्र महत्व रखती हैं। इनमें जहां एक ओर प्रसाद की अपूर्ण अनुसंधान शक्ति, अध्ययन एवं अध्वसाय का परिचय प्राप्त होता है, वहीं कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रसंगों का जीर्णोद्धार एवं पुनर्निर्माण भी हुआ है।

''सज्जन' नाटक का कथानक महाभारत की एक घटना पर आधारित है। बनवास काल में द्वैत सरोवर के निकट समय बिता रहे पाण्डवों पर कुटिल चाल करते हुए कौरव स्वयं उनमें फंस जाते है। युधिष्ठिर से प्रेरित अर्जुन अपने बल–पराक्रम द्वारा उनका उद्धार करता है। नाटक की मूल चेतना सज्जनता अंत में गीत के माध्यम ये व्यक्त होती है। 'कल्याणी परिणय' नाटक का कथानक प्रायः वही है जिसके आधार पर बाद में चन्द्रगुप्त नाटक के चतुर्थ अंक का सृजन किया गया।''[1]

'प्रायश्चित' नाटक की कथावस्तु में कन्नौज–नरेश जयचन्द्र की दुर्भावनाओं–विद्वेष एवं प्रतिकार लेने की कहानी है। ''राज्यश्री" प्रसाद की प्रथम ऐतिहासिक रचना है।[2] "राज्यश्री" नाटक के सम्पूर्ण घटनाचक्र की मूल केन्द्र है। प्रस्तुत कृति घटना प्रधान है, इसकी घटनाकृत बड़ी तीव्र गति से घटित होता है। "राज्यश्री" इस नाटक के कथाकेन्द्र में है। उसका भाग्य कंदुक की भांति उत्थान और पतन एवं सुएनच्वांग को बलि देने के समय आंधी का प्रकोप विस्मयकारक है। अन्य स्थलो पर भी घटनाओं की आकस्मिक विलक्षणता का प्राचुर्य है। इन प्रसंगों में कार्य–कारण भाव स्थापित न होने से वस्तु संयोजन में त्रुटियां आ गयी है और प्रभावन्विति में बाधा पड़ती है।

'विशाख' नाटक का कथानक दो भागों में विभाजित है, प्रथम भाग का आरंभ विशाख के चन्द्रलेखा के प्रति आकर्षण से हो जाता है। द्वितीय भाग का आरम्भ उस समय होता है, जब नरदेव स्वयं संघराय (बौद्ध बिहार) में उपस्थित होता है। नाटककार ने रूपाकर्षण की व्यंजना के लिए कार्य–कारण युक्त नाटकीय स्थिति की प्रयोजना की है। कथानक में कार्य–कारण संबंध बनाने एवं नाटकीय स्थितियों की संयोजना हेतु किए गए परिवर्तन मूल कथा को प्राणमय बनाते हैं। तीसरे अंक में नागजाति का आक्रोश और महल को घेर लेने का दृश्य अत्यन्त प्रभावशाली है।

विश्लेषण :–

'अजातशत्रु' नाटक का कथानक मगध कोशल और कौशाम्बी (वत्स) से संबंधित है। इन स्थलों पर क्रमशः बिम्बसार–अजातशत्रु प्रसेनजित् विरूद्धक तथा उदयन पद्मावती संबंधी घटनाएं घटित होती है। मुख्य कथा का केन्द्र अजातशत्रु है, उसे गृहकलह के लिए उकसाने वाली उसकी जननी महत्वाकांक्षिणी छलना है। कोशल नरेश का पराजित होना, तदन्तर कौशाम्बी और कोशल की सम्मिलित सेनाओं द्वारा मगध नरेश अजातशत्रु की सेनाओं से युद्ध तथा अजातशत्रु का पराजित होकर बंदी बनाया जाना आदि घटनाएं क्रमशः घटित होती जाती है। अजातशत्रु के विवाह और पुत्रोत्पत्ति के अनंतर उसके पश्चाताप के साथ इस मुख्य कथा की परिसमाप्ति हो जाती है। मुख्य कथा के साथ पहला उपकथानक कौशाम्बी से संबंध रखता है। यह पांचवे, छठे तथा नवें अंक तक सीमित है। कौशाम्बी की इस प्रसंगमात्र की कथा को आगे चलकर मुख्य कथा के साथ मिलाने वाली कड़ी पद्मावती है। दूसरा उपकथानक प्रथम अंक के सातवे दृश्य से प्रारंभ होता है। यह कथानक प्रथम अंक के सातवे, आठवे द्वितीय अंक के पहले, दूसरे, चौथे, आठवे, दसवे तथा तृतीय अंक के तीसरे, चौथे और पांचवे दृश्य में प्रदर्शित किया गया है।

इस नाटक का कथानक अत्यन्त बोझिल, जटिल, विश्रृंखल एवं शिथिल है। आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं में अंगाविभाव संबंध स्थापित नहीं हो पाया है। कथानक एवं उपकथानक के उचित सामंजस्य न हो पाने के कारण नाटक का समस्तिगत प्रभाव नहीं पड़ता।

'जनमेजय का नागयज्ञ' पौराणिक नाटक है। इसका मुख्य विषय आर्य और नागजाति के बीच संघर्ष का चित्रण है। आर्य नागों और ब्राह्मण, क्षत्रिय वर्गों के भौतिक और सांस्कृतिक संघर्ष की कल्पना नाटक के सूत्रों

को परिचालित करती है। 'कामना' प्रसाद का विचार प्रधान आन्योपदेशिक नाटक है। इसमें उन्होंने मनोराज्य के अमूर्त एवं सूक्ष्म भावों को मूर्त एवं मानवीय रूप देकर चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। इस नाटक की कथावस्तु निर्माण में कल्पना का विशेष सहारा लिया गया है।

'स्कंदगुप्त' प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इस नाटक का वस्तुविन्यास कतिपय त्रुटियों के होते हुए भी अब तकके रचित सभी नाटकों से अधिक सुगठित एवं सुसम्बद्ध है। आधिकारिक कथावस्तु स्कंदगुप्त और उसके सहयोगियों को लेकर रचित हुई है। इसमें दो प्रासंगिक सूत्र गृहकलह का ऐतिहासिक सूत्र एवं प्रेम संबंधी काल्पनिक सूत्र आधिकारिक कथा के साथ आदि से अंत तक चलते रहते हैं। इसमें नायक की मनोरम एवं कोमलतम् भावनाओं का सुन्दर ढंग से दिग्दर्शन कराया गया है। हृदयपक्ष से संबंधित इस कथानक से अन्य कई घटनाओं एवं राष्ट्रीय महत्व के कार्यों की सृष्टि की गयी है। वास्तव में यह प्रासंगिक कथा–मूल कथानक का प्राण है।

''आचार्य नंददुलारे वाजपेयी स्कन्दगुप्त नाटक के वस्तु विन्यास की सराहना करते हुए लिखते है कि – ''इसमें प्रसाद जी ने कथानक की ऐतिहासिक और राजनीतिक घटनाओं का योग स्कन्दगुप्त की व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं से करना चाहा है। इसीलिए नाटक के कथानक में इन दोंनो घटना समूहों का पारस्परिक संघात मिलता है। एक तरह से सारा वस्तुविन्यास दो स्तरों पर चलता है, जिससे नाटक में अधिक स्वाभाविकता आ गयी है।''[3]

'चन्द्रगुप्त' प्रसाद जी की प्रौढ़ रचना है। इस नाटक की वस्तु योजना स्कन्दगुप्त नाटक की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। मूल कथानक चन्द्रगुप्त और चाणक्य से संबंध रखता है। सारे कथानक में प्रमुख तीन ऐतिहासिक घटनाएं सिकंदर का भारत आक्रमण, नंदकुल का उन्मूलन तथा सिल्यूकस की पराजय है। ये कथानक स्वतः पूर्ण एवं असंबद्ध है और इन्हें घटनाओं, कार्यव्यापारों की अपेक्षा पात्रों के माध्यम से जोड़ा गया है। तीन प्रमुख घटनाओं के साथ–साथ नौ कथासूत्र और जुड़े हुए है। चन्द्रगुप्त–कल्याणी, चन्द्रगुप्त–कार्नेलिया, चन्द्रगुप्त–मालविका,सिंहरण–अलका,राक्षस–सुवासिनी,पर्वतेश्वर–कल्याणी, शकटार–नन्द तथा सुवासिनी–चाणक्य। ये सब गौण कथानक मूल कथा का अंग होकर आते हैं।

मुख्य कथानक के साथ–साथ आए हुए ये आठ कथाएं विभिन्न कथासूत्रों के मूल कथा का अंग होते हुए भी कार्यसंकलन की दृष्टि से दोषपूर्ण ही कहे जायेंगे। चन्द्रगुप्त नाटक में जुड़े ये विभिन्न उपकथानक, नाटककार के विशिष्ट आग्रहों ऐतिहासिक तथ्यों के प्रस्तुतीकरण, चमत्कार–सृष्टि, चरित्र–चित्रण, सोद्देश्यता, प्रेम–प्रसंगों तथा व्यक्तिगत चिंतन को वाणी देने आदि के परिणाम है, जिसके कारण नाटक सुसंबंध नहीं रह पाता और इसकी प्रभान्विति भी प्रभावपूर्ण नहीं हो पाती। 'एक घूँट' लघुत्तम नाटक है। इसकी भावभूमि सामाजिक है। सभी पात्र गोष्ठी के रूप में एकत्र होकर जीवन के विभिन्न विषयों स्वच्छन्द प्रेम, वैयक्तिक आनंदवाद तथा स्त्री–पुरुष की प्राकृतिक स्थिति पर विचारों का आदान–प्रदान करते हैं।

'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद जी की नाटकीय सृजनात्मक प्रतिभा का शीर्ष बिन्दु है। वस्तु संगठन, सुनिश्चित गति एवं सुसंबद्धता की दृष्टि से यह नाटक सर्वाधिक सफल एवं सम्पूर्ण है। इसका कथानक अत्यन्त सरल क्रमबद्ध एवं सुसंगठित है। इसमें घटनाओं और क्रियाओं के बीच कार्य कारण का प्राकृत संबंध है। यहीं कारण है कि एक घटना से दूसरी घटना का अविर्भाव होता चलता है। इसमें ध्रुवस्वामिनी जैसी नारी की समस्या तथा पुनर्विवाह जैसी घटना का चित्रण किया गया है।

निष्कर्ष :–

समग्रालोचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रसाद जी ने अपने नाटकों की कथावस्तु को ऐतिहासिक एवं पौराणिक आधार पर रखा। उनका वस्तु विन्यास और कथानक को परिनिष्ठित करने के लिए काल्पनिकता का भी सहारा लिया गया है। कुछ नाटकों में वस्तु विन्यास अत्यधिक बोझिल और दीर्घ हो गया है, मुख्य कथानक से कई उपकथानकों का जुड़ा होना नाटक मूल कथानक को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं कर पाता है। प्रसाद जी ने नाटक की क्रियाशीलता, अत्यन्त तीव्र, वेगयुक्त एवं गत्यात्मक और एकोद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए एवं कौतुहल और रोचकता को बनाये रखने के लिए कथानक के वस्तु विन्यास में इतिहास के साथ–साथ कल्पना का सहारा अवश्य ही लिया है। प्रसाद ने आधिकारिक कथा के नियंत्रण के लिए अनेक प्रतिबंध स्थापित किए हैं, परन्तु छोटी–मोटी घटनाओं के लिए भी उसी सिद्धांत का अनुसरण होता है। इन

परिस्थितियों की सुसंगत योजना में प्रसाद जी ने अच्छी प्रतिभा दिखाई है, यही कारण है कि बड़े नाटकों में भी वस्तु विन्यास सुसंगठित एवं सभी रचनाओं में परिस्थितियों की उद्‌भावना और योजना सुसंगत है।

संदर्भ :–

[1] दशरथ ओझा – हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास, पृष्ठ 216

[2] राज्यश्री – प्राक्कथन, संस्करण 1957, पृष्ठ 27

[3] आचार्य नंददुलारे वाजपेयी – जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ 161